सम्पादकीय
Editorial

मनुष्य अपने मन में उठने वाले अनेक प्रश्नों को भिन्न–भिन्न प्रकार से समाहित करता है। इन प्रश्नों में कुछ उसके अस्तित्व से सम्बद्ध होते हैं, तो कुछ सृष्टि प्रक्रिया से सम्बद्ध होते हैं। इन प्रश्नों का कारण मनुष्यों का चिन्तनशील और विचारशील स्वभाव है। अपने प्रश्नों के समाधान हेतु वह अनेक प्रक्रियाओं और प्रविधियों से निकलता है। इन प्रक्रियाओं और प्राविधियों को दर्शन एवं विज्ञान के नाम से जाना जा सकता है। दर्शन में मुख्य रूप से तात्त्विक और ज्ञानात्मक सत्ता से सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तरों का अन्वेषण देखने को मिलता है। इसी के आधार पर भारतीय दर्शन के लगभग सभी सम्प्रदायों में मूलभूत सैद्धान्तिकी प्रायशः प्राप्त होती है। यह सैद्धान्तिकी –

1. प्रमाण मीमांसा
2. तत्त्व मीमांसा
3. आचार मीमांसा के रूप में समझी जा सकती है

प्रमाण ज्ञान के साधन के रूप में व्याख्यात हैं। इन प्रमाणों के अधीन प्रमेय अर्थात् प्रकृति के तत्त्वों की सिद्धि आश्रित होती है। कहा भी गया है–

मानाधीना मेयसिद्धिः

अर्थात् इस सृष्टि, जगत् अथवा जीवन के आधारभूत एवं लक्ष्यभूत जितने भी तत्त्वों की संकल्पना दार्शनिक प्रस्थानों में की गई, उनके प्रमाणन हेतु ज्ञानात्मक प्रक्रिया की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिस दर्शन में जितने तत्त्वों पर विचार किया जाता है, उनकी सिद्धि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा ही की जा सकती है। तत्त्व मीमांसा एवं प्रमाण मीमांसा की इसी संकल्पनात्मक प्रक्रिया में सभी दर्शनों में तत्त्वों और प्रमाणों की स्थिति भिन्न–भिन्न दिखती है। चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है और इसी के आधार पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के रूप में इन चार तत्त्वों को स्वीकार करता है, अथवा ऐसे भी कहा जा सकता है कि इन चार तत्त्वों को प्रत्यक्ष से सिद्ध किया जा सकता है। वैशेषिक दर्शन में काल, दिक्, आत्मा आदि प्रत्यक्षेतर तत्त्वों की सिद्धि के लिए अनुमान की परिकल्पना दिखती है।

दर्शन की प्रक्रिया में तत्त्व–अनुसन्धान हेतु अनुमान एक महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक प्रविधि है, जिससे अलक्षित पदार्थ की सत्ता को समझा जा सकता है। न्याय दर्शन में ईश्वर–सिद्धि का मूलभूत आधार अनुमान है। सृष्टि की प्रक्रिया में एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बन्ध अथवा तत्त्वों की पारस्परिक सम्बद्धता उसकी भौतिक सत्ता का बोध कराती है। कोई भी तत्त्व अपनी विशुद्ध मूल अवस्था में जागतिक वस्तुओं में दृष्टिगोचर नहीं होता। तत्त्वों का सम्मिश्रण ही इह–लौकिक पदार्थों के रूप में परिलक्षित होता है। इसी से ही प्राकृतिक एवं मानवीय व्यवहार क्रियाशील रहता है। जैसे वेदान्त दर्शन के अनुसार पृथ्वी आदि पदार्थों के रूप में पञ्चमहाभूतों की पञ्चीकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भूमिज, वायुज आदि पदार्थों की प्राप्ति देती है।

द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते।।

(पञ्चदशी, 1/29)

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु दो या दो से अधिक तत्त्वों से मिलकर जीवन के व्यवहार में दिखती है। यह प्रक्रिया दर्शन और विज्ञान दोनों में समान रूप से प्रतिभासित होती है। इसीलिए एक तत्त्व के प्राधान्य के होने पर भी किसी भी पदार्थ में दूसरे तत्त्व के प्रभाव भी प्रतीत होते हैं। इसे पञ्चमहाभूतों की प्रक्रिया से समझा जा सकता है – पञ्चमहाभूतों में पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु परिगणित होते हैं। इन तत्त्वों के गुणों के आधार पर इन तत्त्वों का स्वरूप समझा जा सकता है। पृथ्वी का गुण है गन्ध, जल का गुण है रस, अग्नि का गुण है रूप,

आकाश का गुण है शब्द और वायु का गुण है स्पर्श। ये गुण तन्मात्र के नाम से भी जाने जाते हैं। इन गुणों के आधार पर ही पृथ्वी आदि महाभूतों का स्वरूप निश्चित होता है, किन्तु प्रकृति में ये महाभूत एक साथ मिलकर मिश्रित रूप में ही व्यवहार करते हैं। इसीलिए जल में गन्ध का आना पृथ्वी के कारण है।

मिट्टी का शीतल होना जल के कारण है, अग्नि में मिट्टी की गन्ध आना पृथ्वी के कारण होता है। इसी प्रकार सभी तत्त्वों में शब्द अथवा ध्वनि का आधार आकाश है। इन सभी तत्त्वों से मिलकर ही प्रकृति रंग–बिरंगी, गन्ध से सुरभित एवं लयात्मक रूप में दिखती है। आधुनिक विज्ञान भी इसी प्रकार प्राकृतिक तत्त्वों का विश्लेषण करता है। जैसे पानी को आधुनिक विज्ञानी हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन का सुमेल मानते हैं। पृथ्वी पर रंगों की स्थिति सूर्य के प्रकाश के अपवर्तन के कारण स्वीकार करते हैं। भारतीय दर्शन में सूर्य अग्नि के स्रोत के रूप में देखा जाता है। उपर्युक्त संकेत इस बात के प्रमाण हैं कि दर्शन और विज्ञान में विश्लेषणात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। दर्शन का आधार भी तर्क है तो विज्ञान का आधार भी तर्क है।

भारत में सभी शास्त्रों और विद्याओं के मूल में दार्शनिक दृष्टि ही महत्वपूर्ण रही है। चाहे वह विज्ञान हो, साहित्य हो, व्याकरण अथवा अन्य कोई भी शास्त्र। क्योंकि ज्ञान की सम्पूर्णता अन्तः अनुशासनात्मकता एवं पारस्परिक सम्बद्धता से ही प्राप्त होती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्राणियों के लक्षण, रोगों के लक्षण एवं उनके उपचारों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु यह भी दार्शनिक पृष्ठभूमि के बिना सम्भव नहीं। यही कारण है कि चरकसंहिता आदि ग्रन्थों में तत्त्वों और प्रमाणों की मीमांसा की जाती है। सृष्टि की संरचना को समझने का प्रयास किया जाता है। आयुर्वेद में प्रतिपादित दर्शन को रसेश्वर दर्शन के नाम से जाना जाता है, जिसका उल्लेख चौदहवीं शताब्दी के विद्वान् माधवाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में किया है।

व्याकरणशास्त्र में दर्शन के समायोजन से शब्दब्रह्म की अवधारणा प्रकाशित होती है। सम्पूर्ण जगत् शब्दब्रह्म का विवर्त रूप ही है, और इसी के प्रभाव से इस जगत् में वैखरी के रूप में सम्पूर्ण वाग्व्यवहार होता है। वैखरी वाणी का एक रूप है। व्याकरण एवं तन्त्र दर्शन में वाणी के चार स्तर प्रतिपादित हैं। इनमें परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चार रूप सम्पूर्ण व्याकरण दर्शन की महत्त्वपूर्ण उपस्थापना हैं। इन चार रूपों में परा को साधना के स्तर पर परम लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। इसी के अन्तर्गत अनाहत नाद की अवधारणा भी प्रकाश में आती है। यह अनाहत नाद कबीरदास के पदों में अनहद के रूप में व्याख्यात है। साहित्य में भी अनेक ऐसे पक्ष हैं, जिनमें दार्शनिक दृष्टि का उत्कर्ष स्थान–स्थान पर प्रतिबिम्बित होता सा परिलक्षित होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस–विवेचन के अन्तर्गत मीमांसा, सांख्य, न्याय, वेदान्त और शैव आदि दर्शनों की दार्शनिक मीमांसा का प्रभाव देखने को मिलता है। इसी प्रकार भारत के सम्पूर्ण कला चिन्तन में भी अनेक ऐसे पक्ष हैं, जिनकी सैद्धान्तिक विवेचना दार्शनिक दृष्टि के बिना सम्भव नहीं है। वास्तु आदि कला चिन्तन में पञ्चमहाभूत, सूर्य और चन्द्रमा की खगोलीय स्थिति और सृष्टि की प्रक्रिया का उल्लेख आवश्यक अंग के रूप में देखने को मिलता है। वास्तु में भवन, मन्दिर, दुर्ग आदि की निर्मिति पृथ्वी आदि महाभूतों की ज्ञानात्मक पृष्ठभूमि के बिना सम्भव नहीं हो सकती।

जिस प्रकार दर्शन में विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओं के समाधान हेतु प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों के तर्कों की कसौटी पर तत्त्व–अनुसन्धान किया जाता है और यथार्थ अनुभवपरक ज्ञान की प्राप्ति की जाती है, ठीक उसी प्रकार विज्ञान भी विभिन्न प्रकार के प्रयोगों और तर्कों के माध्यम से एक निष्कर्ष पर पहुँचता है और प्राप्त ज्ञान की पुष्टि हेतु निरपेक्ष और निष्पक्ष माध्यमों का प्रयोग करता है। आज के युग में प्रयुक्त सॉफ्टवेयर के रूप में तकनीकी से सामग्री के परीक्षण की प्रक्रिया भी ठीक वैसी ही प्रतीत होती है, जैसी भारतीय दर्शन में प्रतिपादित तर्क आधारित प्रमाण की प्रक्रिया। इस आधार पर कहा जा सकता है कि दर्शन और विज्ञान की दृष्टि परस्पर अनुपूरक के रूप में दिखती है। दोनों में प्रश्न उठाने से लेकर समाधान की प्रक्रिया तक काफी समानताएँ दृष्टिगत होती हैं।

– प्रो. प्रतापानंद झा